RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-02
February -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

वृद्धजनों की दारुण गाथा का दस्तावेज़– 'चार दरवेश'

विजय कुमार

पीएच–डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

वृद्धावस्था मानव जीवन का एक गरिमामय पड़ाव है। जहाँ पहुँचकर प्रत्येक मनुष्य कहीं–न–कहीं स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता है। जीवन की उपलब्धियाँ और अनुभवों का भंडार उसे अपने आप में विशिष्टता की अनुभूति प्रदान करते हैं। वह घर का मुखिया है– जीवन के मीठे–कड़वे अनुभवों से समृद्ध। वह अगली पीढ़ी को विकास की राह दिखा सकता है। वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होता है। तब निश्चित होकर, वह मन ही मन कल का सपना देखता है। जहाँ वृद्ध हो जाने पर भी वह घर के मुखिया के रूप में अपने को भरे–पूरे परिवार का अग्रणी मानता है। परन्तु भौतिकवादी युग में वृद्धों की उपयोगिता कम और समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। वृद्धावस्था जीवन का अंतिम पड़ाव है। इस पड़ाव में कार्य करने की क्षमता कमज़ोर हो जाती है। भरण–पोषण के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। यही निर्भरता वृद्धों की समस्याओं की मूल है। माँ–बाप आज अपने ही बच्चों के लिए एक उलझन बनकर रह गए हैं। हृदयेश ने 'चार दरवेश' उपन्यास में वृद्धजनों की दारुण गाथा को मानवीय संवेदना के साथ चित्रित किया है।

वर्तमान पूंजीवादी युग में युवा पीढ़ी तो भूल ही गई है कि उसे धरती पर लाने वाले कभी पूजनीय माने जाते थे। 'पितृ देवो भव' और माता को स्वर्ग से भी अधिक गरिमा प्रदान थी। जननी और जनक के प्रति संतान के कुछ अनिवार्य कर्त्तव्य थे। जिन्हें भारत जैसी ऋषिभूमि पर पितृऋृण अथवा ऋषिऋृण एवं मातृऋृण माना जाता था, जो भारतीय संस्कृति को विश्व की भौतिकवादी संस्कृति से अलग सिद्ध करती थी। किन्तु वे सब बातें आज अप्रासंगगिक हो गई हैं। आज प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों में इतना व्यस्त हो गये हैं कि वे परिवार के सदस्यों के साथ बैठना भी जरूरी नहीं समझता। जिसकी सबसे बड़ी पीड़ा बुजुर्गों को ही झेलनी पड़ती है।

आज परिवार की अवधारणा केवल पति–पत्नी एवं बच्चों तक ही सीमित होने लगी है और वृद्ध परिवार एवं समाज के क्षेत्र या सीमा से बाहर होते जा रहे हैं। हृदयेश ने 'चारदरवेश' उपन्यास में चार वृद्धों की जीवन कहानी में हमारे समाज की विसंगत स्थिति का परिदृश्य प्रस्तुत किया है। जिसमें चारों वृद्ध शाम को एक नियत समयावधि में एक ही स्थान पर मिलते हैं। यह मिलन ही उनका शरण्य है। इस मिलन मण्डली के बाहर की दुनिया से ये निर्वासित हैं। लेखक के शब्दों में– ''शाम के इस वक्त घर के अन्दर बने रहने वाले वे वृद्ध जो परिवार के लिए बेस्रफ हो चुके होते हैं या जिन्होंने अपने को बेमस्रफ का मान लिया होता है, घर से बाहर निकल पड़ते हैं, अन्दर जाग उठी बैचैनी, ऊब छटपटाहट से थोड़ी राहत पाने के लिए। ठौर–ठिकाना उनका बन चुका होता है। सुविधा, सहूलियत से कहीं अधिक परिस्थितियाँ लाचारी, विकल्पहीनता ठौर–ठिकाने को तय करती हैं।''[i] अतः स्पष्ट है कि लोगों के दिलों एवं घरों में वृद्धों के लिए सचमुच स्पेस बहुत कम होता जा रहा है, जिन्हें पाल–पोसकर इतना सक्षम बनाया कि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें, वे सन्तानें उन्हें बोझ समझने लगी हैं।

खेद के साथ कहना पड़ता है कि जो व्यक्ति कल तक पूरे आत्मविश्वास एवं ज़िम्मेदारी के साथ एक भरे–पूरे कुनबे का मालिक था, वह कुछ ही वर्षों बाद बेबसी में छटपटाने लगता है। कभी जिस परिवार का वह स्वयं मुखिया था। आज उसके हित–अहित के संबंध में भी मुंह से बात निकालते सहमता रहता है। वह सर्वथाा आप्रसंगिक हो जाने की स्थिति में अब केवल अपमान की स्थिति से दो चार होता है। उसकी राय का कोई महत्व नहीं रह जाता है। अतः वह परिवार में रहते हुए भी स्वयं को परिवार से कटा हुआ अनुभव करता है। जिसे लेखक ने उपन्यास में ही चिन्ताहरण के माध्यम से दिखाया है। चिन्ताहरण का बेटा रघुनाथ किसी भी विशेष अवसर पर अपने पिता से विचार–विमर्श करना ठीक नहीं समझता है। यहाँ तक कि जब रघुनाथ के पुत्र का अपहरण होता है, तब भी वह अपने पिता चिन्ताहरण से बिना सहमति एवं बात किए बहुत बड़ी रक्म अपहरणकर्ताओं को देकर अपने बेटे अतुल को छुड़वा लेता है। बाप–बेटे के मध्य झलकते अलगाव को लेखक ने इस प्रकार शब्दबद्ध किया है– ''दोनों की स्थिति घड़ी की उन दो सुइयों की भांति थी, जो एक–दूसरे से जुड़ी होने के बावजूद फासला बनाकर चलती है और बीच में कभी–कभी मिलती भी है तो यह मिलना न मिलना जैसा होता है।''[ii]

आज व्यक्ति अति व्यस्त तथा आत्मकेन्द्रित हो गया है। वह अर्थ की अन्धाधुंध दौड़ में इतने आगे निकल गया है कि उसके लिए पारिवारिक रिश्ते कोई मूल्य नहीं रखते। जिसके चलते परिवारों में वृद्धजनों को अकेलेपन का दंश झेलना पड़ता है। 'चारदरवेश' उपन्यास में शिवशंकर के माध्यम से लेखक ने वृद्धों के अकेलेपन का मार्मिक अंकन किया है। शिवशंकर का बेटा अपनी पत्नी सहित इलाहाबाद जाकर बस जाता है। शिवशंकर अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए मोहल्ले के बच्चों में टाफियाँ बांटते हैं तथा होम्योपैथी की मुफ्त दवाएं लोगों को देते

RRIJM 2015, All Rights Reserved

हैं। इस प्रकार अपने आस–पास के लोगों से मिलजुल कर अपना समय व्यतीत करते हैं।

अकेलेपन से घुटते ये बुजुर्ग मुहल्ले के अबोध बच्चों का प्यार पाकर सुगबुगाहट तो अनुभव करते हैं लेकिन चाहकर भी उनको अपने सगे पाते–पोतियों की जगह नहीं दे पाते। उन्हें सच्चे मन से आशीर्वाद भी देते हैं। लेकिन उस समय भी उनका अन्तःस्थल अपनों को याद करता रहता है। अकेलापन व्यक्ति में निराशा भर देता है। यदि वृद्ध पोते–पोतियों के बीच रहते हो तो उन्हें समय का पता ही न चले। शिवशंकर के शब्दों में– ''बेटा पुनीत बात यह है कि बड़े–बूढ़ों के लिए बच्चे बाग–बगीचे में खिले फूल होते हैं रंग–बिरंगे, या फिर सुन्दर खिलौने। उनके बीच रहने से अन्दर का दुख–तकलीफ, अवसाद, थकान सब गायब हो जाता है। पुराने लोगों का कहना है कि नन्हें–मुन्नों से आंगन चहकता है, घर–घर मालूम होता है।''[iii]

अधिकांश वृद्ध आज अपने ही घर में अपनापा नहीं पाते हैं। बल्कि दुत्कार झेलते हुए, अकेलेपन का दंश झेलते हुए किसी तरह दिन काटने को विवश हैं और ओने कोने में पड़े–पड़े, तरस–तरसकर ज़िन्दगी काट रहे हैं। 'चारदरवेश' उपन्यास का रामप्रसाद ऐसा ही पात्र है। एकाकीपन उसके जीवन को नीरस बना देता है। बेटी और जमाई बाबू के भय से किसी से अपनी पीड़ा का इज़हार भी नहीं कर सकता है। अतः अपने मृत पत्नी की फोटे के सामने खड़े होकर रोने लग जाते हैं। रामप्रसाद का दर्द किसी भी बुजुर्ग का दर्द हो सकता है– ''तुम मुझे बहुत जल्द छोड़कर चली गयी। मैं एकदम अकेला पड़ गया हूँ। मेरा अपना कोई नहीं है। अपनों की नज़र में मेरा दिमाग फिर गया है। घर कहने को बस मेरा है। मेरी दशा लद गये मेहमान से भी बदतर हो गयी है। समझ में नहीं आता कि मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूं? जी बहुत घबराता है।''[iv]

अकेलेपन को दूर करने के लिए बुजुर्ग यदि अपने मित्र मण्डली में जाते हैं तो उनके बच्चों को यह भी पसन्द नहीं। अतः रामप्रसाद की बेटी भी उन्हें घर पर ही रहने का परामर्श देती तो रामप्रसाद अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए कहता है– ''घर पर कोई अपना तो है नहीं रस–प्यार से बोलने वाला जो बाँधे जोड़े... जब तक पौरूख है घंटे डेढ़ घंटे के लिए चला जाता हूँ। अपने जाने पहचानों के बीच बैठकर दीन–दुनिया की खबर मिल जाती है। मन थोड़ा बहल जाता है। बूढ़े लोग अपना भला–बुरा ऊपर वाले पर छोड़ देते हैं।''[v]

यदि वृद्ध आर्थिक रूप से अपने परिजनों जैसे पुत्र, पुत्री एवं भाई इत्यादि पर निर्भर हैं, उसके व्यक्तिगत खर्चे परिजनों की आय से पूरे होते हैं तो उसे अनेक बार असहज स्थितियों का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति का आत्मसम्मान भी दाँव पर लग जाता है। 'चारदरवेश' उपन्यास में ही रामप्रसाद के प्रति बेटी एवं दामाद का वार्तालाप स्पष्ट कर देता है कि आर्थिक रूप से निर्भर बुजुर्गों की समाज में क्या स्थिति है। जमाई बाबू के शब्दों में– ''तेरा बाप हरदम ततैया मिर्च बना रहता है। शिकवा–गिला के अलावा कुछ जानता नहीं। वह भी तो घर से बाहर निकलता है। सांझ को जब बैठकबाज़ी से लौटता है तब किसी बिजली वाली दुकान से क्यों नहीं बल्ब ले लेता है? सो क्यों? अपनी टेंट से दस–बारह रुपये जो ढीले करना पड़ेंगे। बुड्ढा चालाक कौवा है।''[vi]

आज की युवा पीढ़ी अपनी भौतिक सुख–सुविधाओं को अधिक महत्व देती है। इसके पास अपने आराम की हर वस्तु खरीदने के लिए पर्याप्त पैसा होता है। लेखक वृद्धों के बीमारी के लिए नहीं। विवेच्य उपन्यास के रामप्रसाद को कुत्ते द्वारा काटने पर इंजेक्शन इसलिए नहीं लगाये जाते कि इस पर करीब दो हज़ार रुपये खर्च होंगे। ईलाज़ न होने के कारण वह रेबीज़ होने से मर जाता है। इस पर लेखक की टिप्पणी किसी भी संवेदनशील व्यक्ति की हो सकती है– ''कुत्ता काटने से पैदा रेबीज़ से पहले ही उनको अपने बेटी दामाद के काटे से पैदा रेबीज़ हो चुका था। अपनों के काटे से पैदा रेबीज़ की पीड़ा ज़्यादा तकलीफदेह होती है, असहन बनती किस्म की, और व्यक्ति अपनी मृत्यु की कामना करने लगता है। रामप्रसाद मानसिक रूप से काफी पहले ही मृत हो चुके थे, शारीरिक रूप से बाद में हुए।''[अपप] अधिकांश घरों में बुजुर्ग घुट–घुट कर मौत की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बहुतेरे युवा दम्पत्ति वरिष्ठ नागरिकों को पर्याप्त भोजन न देकर, आवश्यक दवाइयों से वंचित रखकर धीरे–धीरे मौत के मुँह में ढकेल देते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राचीन समय में बड़े–बूढ़ों के प्रति आदर पगा भाव होता था। उनका सम्मान करना एक जीवन मूल्य समझा जाता था। लेकिन आज की नयी पीढ़ी की संवेदनाओं में बदलाव आ गया है। आज छोटे–बड़े का कोई लिहाज़ ही नहीं रह गया है। घर–घर में बुजुर्ग सदस्य उपेक्षा एवं अमानवीय व्यवहार के शिकार हो रहे हैं। संवेदनशून्य नयी पीढ़ी बुजुर्गों का दुख–तकलीफ देख उनको सांत्वना देने अथवा उसका सहारा बनने के बजाय उन्हें बोझ समझने लगे हैं।

संदर्भ :–

[i] हृदयेश, चारदरवेश, पृ. 7
[ii] वही, पृ. 33
[iii] वही, पृ. 18
[iv] वही, पृ. 139
[v] वही, पृ. 70
[vi] वही, पृ. 16
[vii] वही, पृ. 143

RRIJM 2015, All Rights Reserved